एक स्कूल मैनेजर की डायरी के कुछ पन्ने–XIX

आपका शुक्रिया

फ़राह फ़ारूक़ी

डायरी के पन्ने तो अभी बाक़ी हैं, लेकिन इस शृंखला को यहीं ख़त्म कर रही हूं। ख़त्म करते हुए एक अजीब से अधूरेपन का एहसास है। जैसे, जो पन्ने या लेख लिखे गए, उनमें कहीं कुछ छूट-सा गया हो या फिर एक फ़ोटो को दिखाने के दौरान वो फ़ोटो ही कुछ बदल-सा गया हो। कहानी की शुरुआत और अंत के बहुत से छोर हो सकते हैं। हम कहां से कहां तक की कहानी बयान कर रहे हैं इस पर बहुत कुछ निर्भर करता है। जैसे पिछले लेख में मैंने कोर्ट केस के बारे में लिखा है। अगर वही लेख आज से चार साल बाद लिखा जाएगा तो तस्वीर बदल सकती है। ख़ुदानख़ास्ता बिरादरी को नई बिल्डिंग तामीर कराने में अड़चने डालना मंहगा भी साबित हो सकता है। यानि आने वाले कल के वाक़िये-क़िस्से आज लिखी गई कहानी को नया रंग दे सकते हैं। एक माईनें में मेरे लेख आज का इतिहास दर्शाते हैं। कल की करवटें और मोड़ हमें मजबूर कर सकते हैं कि हम इन्हें नई रोशनी में देखें। तब मेरा नज़रिया भी बदल सकता है।

मैंने डायरी अपने नज़रिये से ज़रूर लिखी है लेकिन इसमें बहुत सी आवाज़े समेटने की कोशिश की हैं। क्योंकि मुख़तलिफ़ लोगों और बच्चों की बातें उन्हीं की ज़बान में दी गई हैं, इसलिए यह गुंजाईश है कि मेरा आपका नज़रिया और विश्लेषण किसी वाक़िये के बारे में फ़र्क़ हो। हां, यह कोशिश ज़रूर रही है कि अपनी बात सुबूतों के बलबूते पर कह पाऊं।

जैसा कि आप जानते हैं कि इस डायरी की पहली क़िस्त मार्च-अप्रैल, 2012 के शिक्षा विमर्श में शाया हुई थी। चार साल के इस लम्बे सफ़र में आपके अलावा कई लोगों का साथ और मदद रही है। इन अज़ीज़ों का शुक्रिया अदा करने के साथ-साथ कुछ मुद्दे जो इस डायरी के लिखने से जुड़े रहे उनकी बात करना चाहती हूं। यह बात शुरू में ही कह देना चाहती हूं कि डायरी लिखना स्कूली माहौल, बच्चों और बड़ों को समझने में बहुत मददगार रहा है और यह रिश्तों के बदलने व स्कूल के संभलने का ज़रिया बना। चाहे स्कूल में बदलाव की चाल भले ही सुस्त हो डायरी लिखना तबदीली का एहसास देता रहा है, जिससे हिम्मत बंधी रही। क्योंकि स्कूल में काम की बारीकियों को मैं देख रही थी और दर्ज भी कर रही थी, इसलिए स्कूली फ़ैसलों के असर को क़रीब से देख पाई और आगे के लिए कुछ सही क़दम उठा पाई। जैसा कि आपने पढ़ा ही है कि स्कूल में जेण्डर कमेटी तो बन गई लेकिन कमेटी के मैम्बर खुद लड़कियों के साथ नाइन्साफ़ी कर रहे हैं। इस प्रक्रिया को कुरेदने, समझने, लिखने पर बात की नौईयत समझ में आई और नए फ़ैसले लेने में मदद मिली। कोशिश करके अध्यापकों और बच्चों के लिए जेण्डर पर कार्यशालाएं आयोजित करवाई थीं।

वैसे तो साथी और बच्चे सभी साथ थे फिर भी एक मैनेजर की ज़िम्मेदारियां और औहदा अकेलेपन का एहसास भी अकसर करवाता है। ऐसे में अपने काम और तबदीली का अक्स देखकर कभी ख़ुशी हुई, कभी

> *अब जब मैं अपने काम और पाल विलिस के काम की तुलना करती हूं तो जहां एक तरफ़ उनके काम की इज़्ज़त दोबाला हो जाती है वहीं उनके रोमांचक काम में कई कमियां भी नज़र आती हैं।*

उसकी क़मजोर चाल पर अफ़सोस, कभी अपनी कमियों-ख़ामियों का एहसास रहा, बहरहाल, अपना साया साथ था। यह डायरी भले ही स्कूल की बेहतरी और मेरी कामयाबी का जश्न मनाती हुई न महसूस हुई हो लेकिन बच्चों की हिम्मत, शोख़ी और हंगामों ने मायूसी से दूर रखा और आंधी में शमा को जलाए रखा।

डायरी लिखने की शुरुआत से पहले यह समझ में नहीं आ रहा था कि लेखों को क्या रूप दिया जाए। डायरी की तरह लिखने का मश्वरा प्रोफ़ेसर अनिल सेठी जी का था। उनका कहना था कि आपकी तफ़सील और शोध इतना बारीक है कि आप ''थ्योरी'' खुद बुन लेंगी आपको उधार मांगी बैसाखियों की ज़रूरत नहीं है। उनका कहना था कि मौजूदा लिटरेचर या काम में आपका काम तबदीली लाने का काम कर सकता है। आज जब मैं अपने काम को नई तरतीब देने की कोशिश में हूं तो उनके मश्वरे का फ़ायदा ज़्यादा महसूस कर पा रही हूं। मैंने अपने पांचवे-छठे लेख में बच्चों के समूहों की बात की है। अब जब मैं अपने काम और पाल विलिस के काम की तुलना करती हूं तो जहां एक तरफ़ उनके काम की इज़्ज़त दोबाला हो जाती है वहीं उनके रोमांचक काम में कई कमियां भी नज़र आती हैं। वह मज़दूर परिवारों के बच्चों के पिछड़ने और उनके स्कूली दस्तूरों-रिवाजों और पाठ्यक्रम के नकारने में ताल्लुक़ देखते-दिखाते हैं। जबकि मेरे काम में बच्चों के पिछड़ने और उनकी पहली सी सामाजिक-आर्थिक स्थिति स्थापित होने में बहुत-सी और पेचीदगियां शामिल हैं। विलिस के बच्चों की तरह हमारे बच्चे अपने पैरों पर जान बूझकर कुल्हाड़ी नहीं मारते। अगर उन्हें इज़्ज़त के एहसास के साथ, ठीक तरह उनकी ज़िन्दगी से ताल्लुक़ समझाकर पढ़ाया जाए तो वे पढ़ने के लिए तैयार हैं। मैं कहना चाहती हूं कि अपने काम के आईने से थ्योरी या औरों के काम को देखना कहीं ज़्यादा फ़ायदेमंद रहा, जिसके लिए मैं अनिल के दिए मश्वरे की क़दर करती हूं। जब शिक्षा विमर्श की पन्द्रहवीं वर्षगांठ पर दिगन्तर जाना हुआ तो डॉ. शारदा जैन ने मेरे काम को काफ़ी सराहा। मेरे यह कहने पर कि मैं फ़िलहाल थ्योरी से जोड़कर नहीं लिख पा रही हूं उनका कहना था कि इस काम की यही ख़ासियत है यानि मैं किसी और काम में न बहकर अपने ही काम को लोगों तक पहुंचा पा रही हूं। वैसे तो तफ़सील इतनी घनी इकट्ठा हो चुकी है कि हर थीम पर चंद से लेकर दस लेख तक लिखे जा सकते हैं। लेकिन पूरे स्कूल के अलग-अलग पहलुओं की झलकियां देने के अपने फ़ायदें हैं। इससे कुछ हद तक स्कूल की एक मुकम्मल-सी तस्वीर उभरती है। जब शिक्षा विमर्श के लिए लिखना शुरू किया था तब इतना एहसास नहीं था कि हिन्दुस्तानी जबानों में लिखना कितना ज़रूरी है। जयपुर, भोपाल, उत्तर प्रदेश वगैरा में काफ़ी लोगों से मुलाकात हुई जिन्होंने मेरे लेखों को पढ़ा और सराहा था। जब भोपाल जाना हुआ तो अज़ीम प्रेमजी फ़ाउन्डेशन के दफ़्तर में मेरा शिद्दत से इन्तज़ार हो रहा था और लोगों ने बेहद खुशी व मौहब्बत से मेरा इस्तक़बाल किया। साथ ही यह बताया कि मेरे लेख शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम के बहुत से पर्चो में शामिल किए गए हैं। खुशी इस बात की ज़्यादा हुई कि ये ज़मीनी मुद्दों और लोगों के साथ काम करने वाले टीचर और कार्यकर्ता थे। मेरी डायरी ऐसे ही तमाम लोगों को अर्पित है।

मेरे ये लेख अनिल के साथ लम्बी बातचीत, बहस, तकरार का नतीजा हैं। उन्होंने हर एक लेख को छपने से पहले पढ़ा है। उस पर हमारी लंबी बातचीत रही है। इनमें से कई लेख ऐसे हैं जो उनके पैने सवालों और तंक़ीदी नज़र की वजह से बिलकुल बदल गए या नए सिरे से लिखे गए। बहुत सों की एक बेहतर शक्ल आपके समाने आई। मैं अपनी ज़बान में अपनी बात कह सकूं इसकी हिम्मत अनिल से ही मुझे मिली है। वे आज भी गंगा-जमनी तहज़ीब के नशे में चूर हैं और मेरी हिन्दुस्तानी तहज़ीब व ज़बान में फ़ारसी और हिन्दी के मिलन को सराहते रहे हैं। इस चार साल के सफ़र में मैंने दोस्त की शक्ल में उन जैसा उस्ताद पाया जिसके लिए उनका सिर्फ़ शुक्रिया कह देना नाकाफ़ी है।

मैं विश्वंभर जी का तहे दिल से शुक्रिया अदा करना चाहती हूं। क्या कहूं बस उन्हीं का दम था कि ये उन्नीस लेख मुझसे लिखवा पाए। कभी तो शिकायत की, 'सब लेख आ चुके हैं, बस आपके लेख का इंतज़ार है, कभी शर्मिंदा किया और कभी सराहा भी। इब्तदा से ही मेरा इसरार रहा कि मैं अपनी ज़बान में ही लिखूंगी और तमाम नुक्ते भी

लगाना चाहूंगी। विश्वंभर जी ने कहने की कोशिश तो की, कि शिक्षा विमर्श में वे चंद ही नुक्तों का इस्तेमाल करते हैं। फिर भी उन्होंने मेरी बात पर ग़ौर किया और भाषा के क्षेत्र में काम करने वाले कुछ लोगों से बात करने के बाद मुझे इज़ाज़त दी कि मैं अपनी बात अपनी ज़बान में रख सकूं। इस सफ़र में एक संपादक के तौर पर उनकी पैनी नज़र ने बेहतर लिख पाने पर उकसाया। मैं उनका और उनकी टीम का, ख़ास तौर से ख्यालीराम जी का शुक्रिया अदा करना चाहती हूं।

> *"मैंने डायरी अपने नज़रिये से ज़रूर लिखी है लेकिन इसमें बहुत सी आवाज़े समेटने की कोशिश की हैं। क्योंकि मुख़तलिफ़ लोगों और बच्चों की बातें उन्हीं की ज़बान में दी गई हैं, इसलिए यह गुंजाईश है कि मेरा आपका नज़रिया और विश्लेषण किसी वाक़िये के बारे में फ़र्क़ हो।"*

डॉक्टर सी. एन. सुब्रमह्मण्यम मेरे लेखों के पाठक रहे हैं और साथ ही कई मुफ़ीद राय-मश्वरे दिए हैं, जिसके लिए मैं उनकी बहुत शुक्रगुज़ार हूं। इनके अलावा कई दोस्त लगातार अपनी तारीफ़ से हिम्मत अफ़ज़ाई करते रहे हैं। इनमें शामिल हैं- मनीष जैन, गुर्जीत कौर, प्रेमपाल शर्मा, अनवर जाफ़री, योगेन्द्र दत्त वग़ैरा। मुझ नाचीज़ के इल्म को इल्म क़रार देकर जो मेरी इज़्ज़त अफ़ज़ाई की उसके लिए मैं इन लोगों की शुक्रगुज़ार रहूंगी। इस कारोबारी दुनिया में जहां इल्म की क़ीमत रुतबे, ज़बान, शऊर और न जाने किन-किन चीज़ों से जुड़ी हैं वहां मेरी डायरी के इन सराहने वालों की मैं बहुत शुक्रगुज़ार हूं।

मेरी अज़ीज़ दोस्त अज़रा रज़्ज़ाक ने मुझे स्कूल के साथ काम करने का मौक़ा फ़राहम करवाया, जिसके लिए मैं उनका शुक्रिया अदा करना चाहती हूं। मैंने इस दौरान उनके बेलौस जज़ेब से बहुत कुछ सीखा है।

मैंनेजर होने के साथ-साथ स्कूल में लगातार अवलोकन करने, विभिन्न लोगों से बातचीत करने और अपने लेखों में रिश्तों और बदलाव को उजागर करने की कोशिश कर रही थी। ये तो आपको मेरे लेखों से बखूबी अंदाज़ा हो गया होगा कि मैंने अपने रोल की अपने हिसाब से तर्जुमानी की थी। इसमें शामिल रहा था- बच्चों को कुछ दिन पढ़ाना, उनके घर मौहल्लों का दौरा, स्कूल के ऐनवल-डे (सालाना जलसे) में ड्रामें की प्रैक्टिस करवाना, सूचना के अधिकार के तहत आए ख़तों का जवाब देना, बच्चों की मैंटर का रोल, टीचर हज़रात से औपचारिक-अनौपचारिक बातचीत, वालदैन और बिरादरी के लोगों से मिलना-मिलाना और इसी तरह के अनेकों काम। मैंने अपने रुतबे और हैसियत (जो समझी-भांपी जाती थी) के चश्मे से रिश्तों को समझने की कोशिश की और उसकी झलक लेखों में भी दिखाई। मेरी यह कोशिश ज़रूर रही कि हमारे बीच बराबरी का एहसास रहे लेकिन यह दावा बिलकुल नहीं कर सकती कि ऐसा मुमकिन भी हो पाया। कई बार चीज़ों को, हालात को और बच्चों-बड़ों की राय को समझने के लिए यह ज़रूरी हो जाता था कि मैं उनसे साक्षात्कार करूं और बहुत से सवालों के ज़रिये उनके ख़यालात जान पाऊं। लेकिन मेरा औहदा और रिश्ते मुझे इसकी इजाज़त नहीं देते थे।

इस सिलसिले में कुछ साथियों और दोस्तों का स्कूल में आना काफ़ी मददगार रहा। लैस्ले यूनिवर्सटी, अमरीका की मीनाक्षी छाबड़ा ने पिछले तीन साल में कई महीने स्कूल में बच्चों और अध्यापकों के साथ काम किया। उन्हीं के साथ मैंने भी कई मुद्दों और चीज़ों पर बच्चों-बड़ों से बातचीत की। उनसे बहुत कुछ नया सीखने को भी मिला। मीनाक्षी और अनिल के जुड़ने से हम स्कूल में इतिहास क्लब की शुरुआत कर पाए जिसके बारे में मैंने अपने एक लेख में लिखा भी है। इन जैसे मेहमानों के आने से स्कूल की आबो हवा में फ़र्क़ पड़ा, नई सोच और ख़यालात का आदान प्रदान हुआ। साथ ही हमें यानि स्कूल के ज़िम्मेदार लोगों को अपनी ज़िम्मेदारियों का एहसास रहा। मीनाक्षी के अलावा, इस दौरान कुछ विद्यार्थियों ने मेरे साथ इन्टर्नशिप की। इनके सिलसिलेवार काम के ज़रिये भी मैं स्कूल को बेहतर तौर पर जान पाई। इनमें शामिल हैं टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ़ सोशल साइंसेज़ के मुरारी झा और अजीम प्रेमजी यूनिवर्सटी के आयूशी भट्ट, अंशिखा और मोहम्मद जलालुद्दीन। जामिया मिल्लिया की कविता और मनीषा इक्का ने भी मेरे लिए तफ़सील जमा की जिसके लिए मैं इन सभी का शुक्रिया अदा करना चाहती हूं।

स्कूल के साथ इस सफ़र ने मुझे मेहनत करके चीज़ें-हालात बदल डालने की सुलगती ख़्वाहिश के साथ औरों के नज़रियों के लिए ठहरना, उन्हें जगह देना और सब्र के साथ काम करने की अच्छी तालीम दी। यह समझने का मौक़ा भी दिया कि हम सब अपने समाजीकरण, हालात और मौक़ों का नतीजा हैं। पता नहीं साधना क्या होती है- लेकिन स्कूल को समझना, इस तरह लिखने की कोशिश करना कि ''औरों'' पर उठने से पहले उंगली खुद पर उठ पाए ताकि कहीं कुछ बेहतरी का ज़रिया बन पाऊं मेरी अपनी सी बंदगी थी। मुझे लगता है कि जहां नए सवालों ने मेरे लिए ज़िन्दगी और उलझा दी वहीं खुद अपनी नज़र में मैं कुछ माइनों में एक बेहतर इंसान बन पाई। इसका सबक़ मैंने स्कूल के बच्चों, उस्ताद, स्टाफ़, प्रिंसिपल साहब और वाईस प्रिंसिपल से सीखा है। स्कूल और अपनी ज़िन्दगी में जगह देने के लिए मैं हमेशा उन सबकी एहसानमंद रहूंगी। इस दौड़ या रेस के ज़माने में स्कूल ने मुझे आगे दौड़ के अकेला हो जाने की बजाय क़दम मिलाने की कोशिश करनी सिखाई है।

सच मानिए अगर प्रोफ़ेसर बन पाने की कोई खुशी हुई है तो बस इतनी है कि मेरी अम्मी को लगता है कि उनकी मेहनत रंग लाई। वरना तो यह लेबल-तमग़े बोझ ही हैं। लेकिन मेरी अम्मी जो खुद कॉलेज में पढ़ा चुकी हैं औहदों से परे हटकर काम की अहमियत और नौइयत को देख पाती हैं। उन्होंने इनमें से कई लेख सुने हैं और तारीफ़ की है। मेरी बिटिया ऐनी की बारीक नज़र ने जो कई बार मुझे ही हैरान कर देती है, इन लेखों में बारीकियां देखीं हैं। ऐनी जो मेरी सबसे प्यारी दोस्त भी है इस शृंखला की सबसे बड़ी प्रशसंक रही है और मुझे हिम्मत देती रही है। लिखने के दौरान जो अहम चीज़ गुज़री, वह थी कि मेरे बेटे हमज़ा ने विज्ञान से (और अपने वालिद से) बग़ावत कर दी। स्कूल में विज्ञान के तालिब ये आजकल लिबरल आर्ट्स के मज़े लूट रहे हैं और खुश हैं। अब कहीं तो मेरी डायरी बड़े बदलाव ला पाई। स्कूल में नहीं तो मेरे घर में ही सही। टाईप करते समय, तमाम पन्ने जो आपने पढ़े इनमें सही नुक्ते लगाने का श्रेय दीपचन्द जी को जाता है। अब तो तलफ़्फ़ुज़ सुनकर ही सही जगह नुक्ता लगा लेते हैं।

अब आप सबसे रिश्ता बना है तो मुलाक़ात भी रहेगी। बाक़ी पन्ने भी कभी न कभी लिखूंगी। कोशिश है कि अपने स्कूल से अब नए रोल में जुडूं। आजकल मैनेजर तो नहीं हूं लेकिन इसकी मैनेजिंग कमेटी में हूं इस साल जुलाई से चाहती हूं कि किसी एक कक्षा में लगातार पढ़ा पाऊं। हो सकता है नई डायरी की शुरुआत हो।

शुक्रिया! आदाब! ◆

लेखिका परिचयः दिल्ली विश्वविद्यालय के लेडी श्रीराम कॉलेज में बीएलएड कोर्स से जुड़ी रही हैं। आजकल जामिया मिलिया इस्लामिया के शिक्षा विभाग में प्रोफेसर हैं।